बेगम समरू : एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ० भूकन सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास)
एस०डी० (पी०जी०) कॉलिज, गाजियाबाद (उ०प्र०)

सारांशिका

अठ्ारहवी शताब्दी के उत्तरार्ध में बेगम समरू एक नृत्य करने वाली लड़की से उठकर एक प्रसिद्ध सैन्य कमांडर, कूटनीतिज्ञ और सरधना जैसी महत्वपूर्ण जागीर की शासिका बन गई। बेगम समरू उस समय की कुछ महिला 'शासिकाओं में से एक, जो आजकल इतिहास और आत्मकथाओं में प्रसिद्ध है। यह लेख इस तथ्य को उजागर करता है कि कैसे फरजाना एक नृत्यांगना से सरधना जागीर की शासिका बनी और हालात प्रतिकूल होते हुए भी ना सिर्फ कुशलतापूर्वक शासन किया बल्कि अंग्रेजों से अपनी मृत्यु तक अपनी जागीर सुरक्षित रखी। यह लेख बेगम समरू के रूप, चातुर्य, मौर्य और कूटनीति से 58 वर्ष तक सरधना पर राज कर दुनिया को विस्मित करने से सम्बन्धित है। अतः यह लेख बेगम समरू के जीवन के उन पहलुओं पर ध्यान देता है जिनमें युद्ध, राजनीति–कूटनीति, प्रेम, षड्यंत्र, शालीनता, सायं और कला का इतिहास है। फरजाना उर्फ बेगम समरू 18वीं सदी का वह चरित्र है, जिसके बिना उस सदी के उत्तरार्ध से लेकर 19वीं सदी के लगभग चार दशकों का इतिहास अधूरा है। दिल्ली के चावड़ी बाजार में नृत्यांगना के रूप में अपनी जीविका चलाने वाली वह सोलह वर्षीय बाला बाद में सरधना की बेगम के नाम से मशहूर हुई।

मुख्य शब्द : बेगम समरू, ऐतिहासिक, अध्ययन, शासनकाल, कूटनीति।

प्रस्तावना

मुगल सम्राट अकबर के शासनकाल में सरधना, सहारनपुर, सरकार के अन्तर्गत एक परखने की हैसियत रखता था। औरंगजेब के समय तक तथा उसके बाद तक भी सरधना की हैसियत एक परखने से अधिक नहीं थी। सरधना के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ यहाँ आये एक यूरोपियन योश के साथ हुआ। सरधने की जितनी ख्याति यूरोपियन योश वॉल्टर रेनार्ड सोम्ब्रे (समरू) के नाम के साथ फैली परन्तु उससे कहीं अधिक उसकी पत्नी बेगम समरू के नाम और कार्यों के साथ फैली। फरजाना उर्फ बेगम समरू का जन्म कोताना नामक पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मेरठ जनपद के एक गाँव में हुआ था। फरजाना देखने में एक साधारण सी बच्ची थी, परन्तु समझदार होने के लक्षण उसमें बचपन से ही नजर आने लगे थे। फरजाना के पिता सैयद लताफत अली खाँ संभवतः मुगलों के दरबारी रहे थे जो बाद में मेरठ के कोताना गाँव में जा बसे थे। मजबूत कद काठी और सख्त मिज़ाज सैयद लताफत अली खाँ ने दो शादियाँ की थी। दूसरी 'शादी उन्होंने कश्मीरी महिला जद्दन से की थी जिसके गर्भ से 1751 ई0 में फरजाना का जन्म हुआ था।

जब फरजाना 6 वर्ष की थी तभी उसके पिता सैयद लताफत अली खाँ की मृत्यु हो गई। पति की मृत्यु के बाद उनके सौतेले बेटे ने फरजाना और उसकी माँ के साथ दुर्व्यवहार करना शुरू कर दिया, जिससे परेशान होकर जद्दन फरजाना को लेकर किसी उचित ..... की खोज में निकल पड़ी। काफी दिन भटकते–भटकते माँ–बेटी सन् 1760 में दिल्ली पहुँचे। दिल्ली में भी दर–दर की ठोकरे खाने के बाद भी कोई सहारा ना मिला। एक दिन जद्दन दिल्ली की जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर बेहोश पड़ी थी और फरजाना उसके पास बैठी विलाप कर रही थी, तभी उधर से चावड़ी बाजार के एक कोठे की मालकिन गुलबदन जान गुजर रही थी, जिनकी नजर विलाप करती फरजाना पर पड़ी। वह तरस खाकर माँ–बेटी को अपने साथ अपनी हवेली ले आयी। गुलबदन जान ने फरजाना को नृत्य और गायन का प्रशिक्षण देना आरम्भ कर दिया। देखते ही देखते फरजाना एक पारंगत नृत्यांगना हो गई। पन्द्रह या सोलह साल की सुन्दर फरजाना पढ़ी–लिखी ना होने पर भी सूझ–बूझ की धनी थी और उससे ज्यादा किस्मत की धनी थी। शायद यही वजह थी कि जब एक रात वॉल्टर रेनहार्ड सोम्ब्रे चावड़ी बाजार की उस गली में आये तो फरजाना कत्थक करती दिखाई दी। सोम्ब्रे फरजाना को देखते ही उस पर मोहित हो गये और कुछ दिनों बाद लगभग 1767 ई0 में दोनों ने शादी कर ली। रेन्हार्ड सोम्ब्रे का जन्म लगभग सन् 1725 ई0 में जर्मनी में हुआ था। वह अपनी माँ के साथ खानाबदोश जिन्दगी गुजारते हुए, बड़ा हुआ था। 14 वर्ष की आयु होने पर उसकी माँ ने उसे कसाई के काम पर भेजा। बाद में वह मिलडबर्ग पहुँचा जहाँ उसे एक जहाज दिखाई दिया जो भारत जाने को तैयार था। रेनहार्ड सोम्ब्रे उस जहाज पर सवार होकर पांडिचेरी जा पहुँचा। यह लगभग 1750 की घटना थी।

शुरूआत में रेनहार्ड सोम्ब्रे ने फ्रेंच सेना में एक साधारण से सिपाही के रूप में काम किया। सोम्ब्रे की प्रकृति एक भगोड़े सिपाही की थी। जहाँ उसे स्थिति अनुकूल लगती थी वह उसी की सेवा में आ जाता था। सन् 1757 में सोम्ब्रे बंगाल के चन्द्रनगर पहुँचा। वह अभी भी फ्रेंच सेना में था। चन्द्रनगर बंगाल में एक फ्रांसीसी बस्ती थी। जब फ्रांसीसी और अंग्रेजों के मध्य युद्ध की स्थिति बनी तो अंग्रेजों ने 1757 ई0 में फ्रांसीसी सेना पर हमला कर दिया। उस समय सोम्ब्रे फ्रेंच सेना की तरफ से

अंग्रेजों से लड़ रहा था, परन्तु जब उसने अपना पक्ष कमजोर देखा तो वह युद्ध को मध्य में छोड़कर भाग निकला।

इसके बाद रेनहार्ड सोम्ब्रे मीर कासिम की सेना में भर्ती हो गया जहाँ उसने नवाब की फौज को यूरोपियन ढंग से संगठित किया। सोम्ब्रे को नवाब की सेना में दो बटालियनों का प्रमुख बनाया गया। इसके बाद सोम्ब्रे अवध के नवाब शुजाउद्दौला के सम्पर्क में आया जहाँ वह नवाब के साथ अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ा परन्तु बक्सर के युद्ध (1764 ई0) में नवाब की हार के साथ उसने खुद को नवाब से अलग कर लिया। अब रेनहार्ड सोम्ब्रे के पास अनुशासित अफसर और कुछ सिपाही मौजूद थे। नवाब का साथ छोड़ने के बाद उसे नई नौकरी की तलाश थी। उसकी यह तलाश उसे राजस्थान ले गई जहाँ उसने जयपुर के राजा सवाई माधो सिंह के यहाँ नौकरी कर ली परन्तु रेनहार्ड सोम्ब्रे यहाँ अधिक दिनों तक नहीं रूका। इसके बाद जून 1765 में सोम्ब्रे को भरतपुर के जाट राजा जवाहर सिंह ने अपनी सेना को प्रशिक्षित करने के लिए रखा।

जवाहर सिंह के दिल्ली अभियान के दौरान ही एक रात रेनहार्ड सोम्ब्रे दिल्ली के चावड़ी बाजार मे गुलबदन जान के कोठे पर पहुँचा जहाँ उसकी मुलाकात फरजाना से हुई। इसके कुछ समय बाद ही रेनहार्ड सोम्ब्रे ने फरजाना से शादी कर ली। 2 रेनहार्ड सोम्ब्रे से शादी के बाद फरजाना बेगम समरू के नाम से जानी जाने लगी। शादी के बाद सोम्ब्रे फरजाना उर्फ बेगम समरू को लेकर आगरा आ गये जो उस समय भरतपुर रियासत का हिस्सा बन गयी थी।

भरतपुर रियासत के अधीन रहते हुए रेनहार्ड सोम्ब्रे ने मराठों (6 अप्रैल, 1770 ई०) व नजफ खाँ (30 अक्टूबर, 1773) से युद्ध किया हालांकि दोनों युद्धों में राजा नवल सिंह की कायरता की वजह से हार का सामना करना पड़ा परन्तु रेनहार्ड सोम्ब्रे अपनी दूरदर्शिता, सैन्य अनुशासन व राजनीति से अपनी काफी सेना को बचा ले गया। भरतपुर राज्य की सेवा करने के बदले सोम्ब्रे को रियासत की ओर से डीग के एक मील दूर पश्चिम में एक गाँव जागीर के रूप में दिया गया जिसे आज भी ''समरू का नगला'' नाम से जाना जाता है। इन युद्धों के बाद रेनहार्ड सोम्ब्रे भरतपुर को छोड़कर 1773 में मुगल सम्राट की सेवा में आ गया। रेनहार्ड समरू 30 हजार प्रतिमाह की तनख्वाह पर मुगल सम्राट की सेवा में आया था, क्योंकि उस समय रेनहार्ड सोम्ब्रे की ख्याति एक उत्कृष्ट, कूटनीतिज्ञ योद्धा व सेनापति के रूप में फैल चुकी थी। मुगल बादशाह शाहआलम द्वितीय के आदेश पर सोम्ब्रे ने सहारनपुर के रोहिल्ला लड़ाके और मुगलों के बागी जाबिता खाँ को करारी शिकस्त दी। रेनहार्ड सोम्ब्रे की इस बहादुरी से खुश होकर मुगल सम्राट शाहआलम द्वितीय ने उसे सरधने की जागीर तोहफे के रूप में दी। सहारनपुर से अलीगढ़ के टप्पल तक फैली अपनी इस जागीर में रेनहार्ड सोम्ब्रे ने सरधना को अपनी राजधानी के रूप में चुना। सरधना की जागीर के साथ ही रेनहार्ड सोम्ब्रे को आगरा के सिविल और मिलिट्री गवर्नर के ओहदे से भी नवाजा गया। सोम्ब्रे के लि, यह सम्मान की बात थी। वह बेगम फरजाना को लेकर अकबराबाद आ बसा और अकबराबाद के महल को अपनी रिहाईश बनायी। इसके कुछ ही दिन बाद 4 मई, 1778 ई0 को रेनहार्ड सोम्ब्रे की मृत्यु हो गई। रेनहार्ड सोम्ब्रे को उनके बंगले के बाग में दफनाया गया और फिर आगरा के रोमन मिशनरी कब्रिस्तान में दफना दिया गया। सोम्ब्रे की मृत्यु के बाद फरजाना एकदम सदमें में चली गई। वह हर मुहिम पर अपने पति के साथ जाती थी। फरजाना एक निर्भीक व महत्वाकांक्षी महिला थी। यूरोपियन अधिकारियों और सैनिकों ने फरजाना बेगम से आग्रह किया कि वे इस सेना की बागडोर सम्भाल कर जागीर को सुरक्षित रख सकती हैं। सैनिक फरजाना बेगम के युद्ध कौशल से परिचित थे। बेगम की सहमति पाते ही मुगल बादशाह शाहआलम द्वितीय ने दिल्ली दरबार से मोहरनामा जारी कर दिया जिसके अनुसार बेगम समरू सरधना की जागीर की मलिका व सेना की कमांडर बन गई और इस प्रकार 1778 ई0 मे सरधने की जागीर पर बेगम के शासन का शुभारंभ हुआ। बेगम समरू के कोई औलाद नहीं थी, पर उनके पति सोम्ब्रे की पहली पत्नी से एक पुत्र था जिसका नाम लुई बाल्थजर रेनहार्ड था। बेगम के अनुरोध पर बादशाह शाहआलम द्वितीय ने उसे 'जफरयाब' की उपाधि से अलंकृत किया था, लेकिन दुर्भाग्य से बेटा अपने बाप या सौतेली माँ जितना समझदार व कूटनीतिज्ञ योद्धा नहीं था। अभी उसकी उम्र भी कम थी इसलिए किसी दरबारी या किसी अन्य ने जफरयाब को जागीर संभालने योग्य ना समझा। बेगम समरू ने अपनी जागीर में गहन रूचि और मजबूती के साथ काम करना शुरू किया और खुद को राजकाज व सैनिक अभियानों में व्यस्त रखा। अपने पति की मृत्यु के 3 वर्ष बाद बेगम समरू ने एक ऐतिहासिक फैसला लिया। 7 मई, 1781 ई0 को आगरा के रोमन कैथोलिक चर्च में पादरी फादर ग्रेगोरी के नेतृत्व में अपने सौतेले बेटे जफरयाब के साथ रोमन कैथोलिक धर्म स्वीकार करने की ..... कर दी। रोमन कैथोलिक धर्म स्वीकार करने के बाद बेगम समरू जोहाना नोबोलिस सोम्ब्रे और बेटा लुई बाल्थजर रेनहार्ड के नाम से जाने गये परन्तु बेगम, बेगम समरू के नाम से अधिक प्रसिद्ध हुई। धर्म परिवर्तन के बाद बेगम समरू सरधना वापिस आ गई और राजकाज में व्यस्त हो गई। बेगम के ईसाई मत स्वीकार करने के पीछे विभिन्न मत थे। कुछ लोग इसे अपने ईसाई पति सोम्ब्रे के प्रति प्रेम के रूप में देखते थे तो कुछ इसे बेगम समरू की चतुराई और कूटनीति के रूप में पहचानते थे। दरअसल यह वह समय था जब भारत में मुस्लिम शासकों का तेजी से पतन हो रहा था। बेगम ने अपनी दूरदर्शिता से यह भांप लिया था कि इन परिस्थितियों में उसका विदेशी ताकतों और चर्च से मिलना ही श्रेयस्कर होगा। इन्हीं दिनों बेगम की सेना मे जाने–माने एक साहसिक सैनिक जॉर्ज थॉमस जो आयरलैंड का निवासी था, का प्रवेश हुआ। देखते ही देखते जॉर्ज थॉमस बेगम की सेना की एक बटालियन के प्रमुख के ओहदे तक जा पहुँचा। इस सैनिक ने अपनी बुद्धि, कूटनीतिज्ञता और साहस से सरधना रियासत की ख्याति दूर–दूर तक फैलायी।

मराठा सरदार महादजी सिंधिया को 6 जनवरी 1772 ई0 को बादशाह शाहआलम को सिंहासन पर बैठाने का श्रेय प्राप्त है। मुगल बादशाह शाहआलम द्वितीय ने महादजी सिंधिया को वकील–ए–मुतलक की पदवी से पुरस्कृत किया और राज्य के संचालन का उत्तरदायित्व सौंपा। महादजी ने अनेक विद्रोहों का

दमन कर मुगल राज्य में व्यवस्था स्थापित की परन्तु 1787 ई0 में जयपुर के अभियान में उसकी स्थिति कमजोर हो गई। दिल्ली में वकील–ए–मुतलक महादजी सिंधिया की अनुपस्थिति का फायदा उठाकर सहारनपुर का शासक रूहेला बागी सरदार जाबिता खाँ का बेटा गुलाम कादिर दिल्ली आ पहुँचा। 18 जुलाई, 1788 ई0 यह रूहेला सरदार लाल किले के लाहौरी दरवाजे से होता हुआ अपने दो हजार सैनिकों के साथ लाल किले में प्रवेश कर गया। गुलाम कादिर ने मुगल बादशाह शाहआलम द्वितीय को बंधक बना लिया और जबरदस्ती अमीर–उल–उमरा की उपाधि पेशकश की। जैसे ही बेगम समरू को खबर पहुँची की गुलाम कादिर ने दिल्ली दरबार को अपने कब्जे में ले लिया है वैसे ही बेगम समरू ने अपनी सेना को दिल्ली कूच का आदेश दिया। बेगम जानती थी कि गुलाम कादिर पूरी तैयारी और चालबाजी के साथ आया होगा तथा बेगम उससे मुकाबले में परास्त भी हो सकती है परन्तु बेगम को किसी भी तरह दिल्ली सल्तनत को बचाना था। बेगम समरू के दिल्ली आने की खबर सुनते ही गुलाम कादिर की हालत खराब हो गई। उसने बेगम समरू से सुलह करने और दिल्ली की सत्ता आपस में बाँट लेने की पेशकश भी की पर बेगम समरू ने अपनी कूटनीतिज्ञता से गुलाम कादिर को परास्त कर लौटने पर मजबूर कर दिया। जब यह बात मुगल बादशाह शाहआलम को पता चली तो वह खुशी से रो पड़ा। उसे बेगम से जिस साहस की उम्मीद थी वह बेगम ने कर दिखाई। ऐसे नाजुक वक्त में बेगम समरू का बादशाह के प्रति वफादार बने रहना उसके चरित्र की उच्चता को दर्शाता है। शाहआलम द्वितीय ने बेगम समरू के इस कृत्य से खुश होकर बेगम समरू को 'जेब़–उन–निशा' यानि मेरी प्रिय बेटी के खिताब से नवाजा। इसके कुछ समय बाद एक बार फिर रूहेला सरदार गुलाम कादिर ने दिल्ली पर पुनः आक्रमण कर दिया। उस समय महादजी सिंधिया मथुरा में व्यस्त थे तथा बेगम समरू जॉर्ज थॉमस के साथ टप्पल की व्यवस्था करने में व्यस्त थी। इन दोनों की अनुपस्थिति का तथा दरबारी इस्माइल बेग की गद्दारी का फायदा उठाकर गुलाम कादिर लाल किले में घुस आया तथा बादशाह को अपदस्थ कर उसकी आँखें निकलवा ली और 'शाही स्त्रियों के साथ भी अमानवीय व्यवहार किया। संदेश मिलते ही महादजी सिंधिया ने अपनी सेना को दिल्ली कूच करने का आदेश दिया। बेगम समरू भी लाल किले की काटना से वाकिफ होते ही दिल्ली आ गई। सिंधिया और बेगम की आने की खबर सुनते ही गुलाम कादिर लाल किला खाली कर भाग निकला। इसके बाद गुलाम कादिर को पकड़कर मौत के काट उतार दिया गया। इस पूरे समय में बेगम समरू ने मुगल बादशाह शाहआलम द्वितीय का समर्पण भाव से साथ दिया, लेकिन इस समय सरधना की जागीर की स्थिति थोड़ी बिगड़ गई थी। जॉर्ज थॉमस बेगम का एक विश्वसनीय अधिकारी था जो टप्पल की जागीर की देखभाल में नियुक्त किया गया था। जॉज थॉमस के दरबार से दूर रहने पर एक अन्य सैनिक अधिकारी लीवासे, थॉमस के विरूद्ध बेगम समरू को भड़काता रहता था। बेगम समरू लीवासे से प्रभावित थी तथा लीवासे के भड़काने पर बेगम ने जॉर्ज थॉमस को वापस बुला लिया। एक बार जब जॉज थॉमस पंजाब अभियान पर था तो बेगम ने उसकी पत्नी मारिया को बुलाकर अपनी भड़ास निकाली। परिणामस्वरूप थॉमस ने पंजाब अभियान को बीच में ही छोड़कर अपने परिवार के साथ टप्पल में जाकर खुद को स्वतं शोषित कर दिया। इससे लीवासे की बातें सच साबित हो गई परन्तु लीवासे एक धूर्त व्यक्ति था जो बेगम को उच्च अधिकारियों के खिलाफ भड़काता रहता था। टप्पल के विद्रोह को दबाने के लिए कप्तान सेलुर के नेतृत्व में सेना भेजी गई जिसके सामने जॉर्ज थॉमस ने बिना प्रतिरोध के समर्पण कर दिया। बेगम जॉर्ज थॉमस से काफी प्रभावित थी इसलिए उसे कोई हानि नहीं पहुँचायी गई। बेगम ने टप्पल को अपने कब्जे में ले लिया जिससे अच्छा खासा राजस्व प्राप्त होने लगा। जॉर्ज थॉमस के जाते ही सरधने की जागीर पर लीवासे का ..... राज कायम हो गया तथा उसकी महत्वाकांक्षों, भी बढ़ने लगी। वह बेगम से शादी करके जागीर का मालिक बनने के सपने देखने लगा। खुद बेगम समरू भी लीवासे से अत्यधिक प्रभावित थी। बेगम ने अन्ततः एक दिन लीवासे से गुप्त रूप से शादी कर ली। इस शादी के सिर्फ दो गवाह थे, जो बेगम और लीवासे के वफादार थे बर्नियर और सेलुर। 1793 ई0 में फादर ग्रेगोरी ने यह गुप्त शादी करायी थी। बेगम समरू ने गुप्त रूप से शादी इसलिए की थी क्योंकि एक फ्रेंच से शादी करने से बगावत होने का डर था। बेगम से अलग होने के बाद जॉर्ज थॉमस ने मराठा सरदार अप्पा खंडेराव की सेना में अपनी महत्वपूर्ण जगह बना ली थी तथा उसके साथ कई सफल अभियान कि 12 फरवरी, 1794 को महादजी सिंधिया की मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु से उत्तर भारत में मराठा शक्ति को बहुत धक्का लगा, लेकिन अप्पा खंडेराव ने इस मौके का फायदा उठाकर महादजी की रियासत को हथियाने का फैसला किया। अप्पा खंडेराव की दिल्ली सल्तनत पर भी नजर थी। मुगल बादशाह शाहआलम के पुत्र मिर्जा अख्तर को इस खतरे को भाँपने में देर ना लगी उसने तत्काल बेगम समरू को संदेश भेजा व अप्पा खंडेराव के विरूद्ध युद्ध करने को कहा चूंकि अप्पा खंडेराव की सेना में जॉर्ज थॉमस था जिससे बेगम समरू की सेना में यह अफवाह फैल गई कि यह अभियान जॉर्ज थॉमस को नुकसान पहुँचाने के लिये, लीवासे की सलाह पर किया जा रहा है। लीवासे को सेना के अधिकतर अफसर व सैनिक उसके घमंडी व उद्दंड व्यवहार के कारण नापसन्द करते थे। अतः सेना के बड़े हिस्से में बगावत फैल गई और स्थिति इतनी खराब हो गई कि बेगम समरू को यह अभियान बीच में ही छोड़कर सरधना वापस आना पड़ा। पर हालात और बदत्तर होने लगे। सेना ने बेगम के हुक्मों को मानने से इंकार कर दिया और बगावत की चिंगारी फैलती गई। सैनिकों और अधिकारियों के रूख में आये इस बदलाव से बेगम समरू के मन में घबराहट होना आवश्यक था। बेगम समरू ने अपने फ्रेंच पति लीवासे के साथ भागने की योजना बनायी। उधर बागियों ने बेगम समरू के सौतेले बेटे जफरयाब को सरधना की गद्दी पर बैठने के लिए राजी कर लिया। जफरयाब के साथ सेना की टुकड़ी सरधना आने की खबर सुनते ही बेगम समरू अपने पति लीवासे व कुछ विश्वसनीय अधिकारियों के साथ भाग निकली परन्तु बागी सैनिक उनके पीछे लग गये। सैनिकों को पीछे आते देख व पकड़े जाने के डर से बेगम ने अपनी कमर से खुखरी निकाली और खुद पर

वार कर दिया। खुखरी के वार से बेगम समरू खून से लथपथ होकर गिर गई और बेहोश हो गई। लीवासे ने बेगम समरू को मृत समझकर अपनी पिस्तौल से खुद को उड़ा दिया। लीवासे की मौके पर ही मृत्यु हो गई। अगले दिन बेगम को जब होश आया तो वह जफरयाब की कैद में थी जहाँ बेगम को शुरू में तरह–तरह की यातनाऐं दी गई परन्तु बाद में सामान्य कैदी की तरह व्यवहार किया गया। कैद में होने के बावजूद बेगम समरू के कुछ गुप्तचचर व वफादार मौजूद थे जो महल में होने वाली हर घटना की जानकारी बेगम समरू को देते रहते थे। इस विपदा में बेगम समरू को सिर्फ जॉर्ज थॉमस से उम्मीद थी इसलिए बेगम ने गुप्त रूप से उनको पैगाम भिजवाया। थॉमस सारी पुरानी बातें भूलकर बेगम समरू की मदद के लिए सरधना जा पहुँचा और बहुत ही आसानी से बागियों को परास्त कर दिया तथा महल पर कब्जा जमा लिया और बेगम समरू को कैद से रिहा करा दिया। अक्टूबर 1795 से 9 जुलाई 1796 तक लगभग नौ माह की कैद के बाद बेगम समरू सरधना की जागीर की मलिका बन गई। जफरयाब को कैद कर लिया गया और दिल्ली में बेगम की हवेली में रखा गया जहाँ उसकी 1802 ई0 में बीमारी से मृत्यु हो गई। बेगम समरू जफरयाब की विधवा जूलियाना तथा बेटी जूलिया ऐनी को अपने साथ लेकर सरधना आ गई। यह ऐसा समय था जब ब्रिटिश हुकुमत का एकमात्र उद्देश्य अपने राज को मजबूत करना तथा छोटी–छोटी रियासतों को अपनी हुकुमत का हिस्सा बनाना था। ऐसे समय में बेगम ने अपनी बुद्धि और कूटनीतिज्ञता से अपनी जागीर को बचाये रखा व कुशलतापूर्वक शासन करती रही। 1805 में अंग्रेजों के साथ हुकूमत अनुबंध के अनुसार बेगम की आधी सेना ईस्ट इण्डिया कम्पनी के निर्देश पर तैयार हुई। समय पर बेगम समरू अंग्रेजों की सहायता करती रहती थी जिससे अंग्रेजों व बेगम समरू के सम्बन्ध सामान्य रहे। ब्रिटिश हुकुमत द्धारा उनकी जागीर को जीते जी ..... बनाये रखने की स्वीकृति देने के बाद बेगम की चिंता दूर हो गई। अब बेगम ने अपना ध्यान प्रजाहित तथा कैथोलिक मिशन की सेवा में लगाना आरम्भ कर दिया। उन्होंने सरधना में रोम के सेंट पीटर्स चर्च की अनुकृति की तरह एक भव्य चर्च बनवाया जो सन् 1822 ई0 में तैयार हुआ। इस चर्च को सेंट मेरी कैथेड्रल चर्च नाम दिया गया। 1830 ई0 में बेगम समरू ने एक प्रार्थना द्धार (चैपल) भी बनवाया, जिसे सेंट पॉल नाम दिया गया। बाद में बेगम ने 1834 ई0 में एक खूबसूरत गिरजाघर मेरठ में भी बनवाया। बेगम की रूचि चित्रकला में भी थी जिसके चलते उन्होंने 1820 ई0 में दिल्ली के एक कलाकार मोहम्मद आजम को बुलाया। मौहम्मद आजम ने बेगम के महल में तरह–तरह की मनमोहक आकृतियाँ बनायी।

बेगम अब बेहद उम्रदराज हो गई थी। अब वह अपनी विरासत के मसले को तय करना चाहती थी। इस मामले को हल करने के लिए उन्होंने तत्कालीन ब्रिटिश गवर्नर को भी अवगत करा दिया। 16 दिसम्बर, 1831 ई० को बेगम ने अपनी वसीयत को पंजीकृत कराया। इसके अनुसार डेविड ऑक्टर लोनी डायस और कर्नल क्लीमेस ब्राउन को इस वसीयत को लागू करने का जिम्मेदार बनाया। उन्होंने इस वसीयत के अनुसार अपनी सारी सम्पत्ति अपने दत्तक पुत्र डेविड के नाम हस्तांतरित कर दी। अंतिम दिनों में डेविड ने बेगम समरू की खूब सेवा की। बेगम का उस पर बहुत स्नेह था। धीरे–धीरे बेगम समरू ने सभी दैनिक कार्य डेविड को सौंप दिये। बेगम समरू काफी बीमार रहने लगी। अन्ततः 26 जनवरी, 1836 की रात को बेगम समरू ने अपने गायन कक्ष में अंतिम सांस ली। पूरे विश्व में विशेष तौर पर यूरोपियन देशों में बेगम समरू की मृत्यु की खबर अखबारों में छपी। बेगम समरू को पूरे राजकीय सम्मान के साथ दफनाया गया। जिस समय बेगम समरू की मृत्यु हुई उस समय उनकी उम्र लगभग 85 वर्ष थी। इस प्रकार उन्होंने अपनी बुद्धि चातुर्य एवं कूटनीति से 58 वर्ष सरधना की जागीर पर कुशलतापूर्वक राज किया।

सन्दर्भ :

1. वर्मा, राजगोपाल सिंह, बेगम समरू का सच, पृष्ठ 49
2. बनर्जी, ब्रजेन्द्रनाथ, बेगम समरू, पृष्ठ 173
3. नागर, अमृतलाल, सात घूंघट वाला मुखड़ा, पृष्ठ 83
4. श्रीवास्तव, सत्येन्द्र, बेगम समरू, पृष्ठ 123
5. कुमार विश्नेश, मेरठ के पाँच हजार वर्ष, पृष्ठ 121
6. वर्मा, राजगोपाल सिंह, बेगम समरू का सच, पृष्ठ 138
7. वही, पृष्ठ 167
8. शर्मा, महेन्द्र नारायण, लाईफ ऑफ टाईम ऑफ बेगम समरू ऑफ सरधना, पृष्ठ 205
9. पैट्रिक फादर, सरधना : वहाँ की बेगम, वहाँ के तीर्थस्थान, वहाँ की बसिलिका, पृष्ठ 96
10. वर्मा, राजगोपाल सिंह, बेगम समरू का सच, पृष्ठ 211।